...विंदके पत्र

(...के नाम)

श्रीअरविंद आश्रम
पांडीचेरी
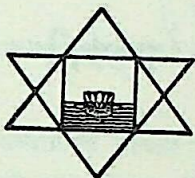
श्रीअरविंदके पत्र

(पत्नीके नाम)

श्रीअरविंद आश्रम
पांडीचेरी

Sri Aurobindo's Letters

तृतीय संस्करण १९८१

Published by Sri Aurobindo Ashram
Publication Department and Printed at
All India Press, Pondicherry.

निवेदन

श्रीअरविंदने जब आध्यात्मिक साधना आरंभ की और उसकी महानताका भी जब उन्हें कुछ परिचय मिलने लगा तब उनकी यह प्रबल इच्छा हुई कि उनकी धर्मपत्नी श्रीमृणालिनी देवी भी उस पथमें आवें और इस तरह उनकी सच्ची सहधर्मिणी बनें। उन्होंन अपनी इस इच्छाको चिट्ठियोंद्वारा अपनी पत्नीको जनाया और अपनी परिस्थितिको स्पष्ट करनेके लिये उन्हें अपने कुछ गुप्त मनोभावोंको भी प्रकट करना पड़ा। परंतु अलीपुर-बमके मामलेके प्रसंगपर जब उनके घरकी तलाशी हुई तब उनकी ऐसी तीन चिट्ठियां पुलिसके हाथ पड़ गयीं। पुलिसन उन तीनों चिट्ठियोंको अपने सबूतके रूपमें अदालतमें पेश किया और उनपर काफी बहस हुई। इस तरह श्रीअरविंदकी ये तीनों गुप्त व्यक्तिगत चिट्ठियां सर्वसाधारणके सामने आ गयीं। इन्हीं चिट्ठियोंका हिंदी अनुवाद इस पुस्तिकाके रूपमे प्रकाशित किया जा रहा है। ये चिट्ठियां एक ओर जैसे श्रीअरविंदके दिव्य जीवनपर कुछ प्रकाश डालती हैं वैसे ही दूसरी ओर नारी-धर्मका रहस्य भी प्रकट करती हैं। हमारा विश्वास है कि इन दोनों दृष्टियोंसे यह पुस्तिका उपादेय सिद्ध होगी।

—प्रकाशक

श्रीअरविंद्के पत्र

(पत्नीके नाम)

३० अगस्त

प्रियतमा मृणालिनी,

तुम्हारी २४ अगस्तकी चिट्ठी मिली। तुम्हारे मां-बापको फिर वही दुःख हुआ है—यह सुनकर मुझे दुःख हुआ। तुमने यह नहीं लिखा कि कौनसा लड़का परलोकवासी हुआ है। दुःख करनेसे भला क्या लाभ? संसारमें सुखकी खोज करनेसे ही सुखके बीच दुःख दिखायी देता है, दुःख सर्वदा ही सुखको घेरे रहता है, और यह नियम केवल पुत्रकामनाके विषयमें ही लागू नहीं होता, बल्कि सभी सांसारिक कामनाओंका यही फल होता है। चित्तको धीर-स्थिर रखकर सब सुख-दुःख भगवान्के चरणोंमें अर्पण करना ही मनुष्यके लिये एकमात्र उपाय है।

मैंने २०) बीस रुपयेकी जगह दस रुपया ही पढ़ा था, इसलिये दस रुपया भेजनेकी ही बात लिखी थी। अगर पंद्रह रुपयेकी जरूरत है तो पंद्रह रुपया ही भेजूंगा। इस महीने सरोजिनीने जो तुम्हारे लिये दार्जिलिंगमें कपड़ा खरीदा था उसके लिये रुपया भेजा है। तुमने जो इधर उधार कर लिया है यह मुझे कैसे मालूम होता? पंद्रह रुपया लगा था सो भेज दिया है; और तीन-चार रुपया लगेगा सो आगामी महीने भेज दूंगा। इस बार तुमको बीस रुपये भेजूंगा।

अब उस बातपर आवें। संभवतः इस बीच तुम्हें इस बातका पता चल गया है कि जिसके भाग्यके साथ तुम्हारा भाग्य जुड़ा हुआ है वह बड़ा ही विचित्र मनुष्य है। इस देशमें आजकलके लोगोंका जैसा मनोभाव है, उनके जीवनका जैसा उद्देश्य है, कर्मका जैसा क्षेत्र है, ठीक वैसा ही मेरा नहीं है; सब कुछ ही भिन्न, असाधारण है। सामान्य लोग असाधारण मत, असाधारण प्रयास, असाधारण उच्च आशाको जो कुछ कहते हैं उसे संभवतः तुम जानती हो। इन सब भावोंको वे पागलपन कहते हैं, परंतु पागलके कर्मक्षेत्रमें सफलता आनेपर उसे पागल न कह प्रतिभावान् महापुरुष कहते हैं। किंतु कितने लोगोंका प्रयास सफल होता है? हजारों आदमियोंमें दस आदमी असाधारण होते हैं, उन दस आदमियोंमें कोई एक कृतकार्य होता है। मेरे कर्मक्षेत्रमें सफलता आनेकी बात तो दूर, संपूर्ण रूपसे अभी मैं कर्मक्षेत्रमें उतर भी नहीं सका हूं, अतएव मुझे पागल ही समझना। पागलके हाथोंमें पड़ना एक स्त्रीके लिये बड़ा ही अशुभ है, क्योंकि स्त्री-जातिकी सारी आशा सांसारिक सुख-दुःखमें ही आबद्ध होती है। पागल अपनी स्त्रीको सुख नहीं देता, दुःख ही देता है।

हिंदूधर्मके प्रणेताओंने इस बातको समझा था, वे असामान्य चरित्र, प्रयास और आशाको बड़े आदरकी दृष्टिसे देखते; पागल हो या महापुरुष, असाधारण मनुष्यको बड़ा मानते; किंतु इन सब बातोंसे तो स्त्रीकी भयंकर दुर्दशा होती है, फिर उसका क्या

उपाय हो ? ऋषियोंने यह उपाय ठीक किया, उन्होंने स्त्रीजातिसे कहा कि तुम लोग दूसरेकी अपेक्षा 'पतिः परमो गुरुः' इसी मंत्रको स्त्री-जातिका एकमात्र मंत्र समझना। स्त्री स्वामीकी सहधर्मिणी है, पति जिस कार्यको स्वधर्म मानकर ग्रहण करें, उसीमें तुम सहायता देना, सलाह देना, उत्साह देना, उन्हें देवता समझना, उन्हींके सुखमें सुख, उन्हींके दुःखमें दुःख मानना। कार्यका चुनाव करना पुरुषका अधिकार है, सहायता और उत्साह देना स्त्रीका अधिकार है।

अब प्रश्न यह है कि तुम हिंदू-धर्मका पथ ग्रहण करोगी या नये सभ्यधर्मका पथ ग्रहण करोगी ? पागलके साथ तुमने विवाह किया है—यह तुम्हारे पूर्वजन्मार्जित कर्मदोषका फल है। अपने भाग्यके साथ एक समझौता कर लेना अच्छा है, वह समझौता किस तरह होगा ? पांच आदमियोंकी राय मानकर क्या तुम भी उसे पागल कहकर उड़ा दोगी ? पागल तो पागलपनके रास्ते दौड़ेगा ही, तुम उसे पकड़कर नहीं रख सकती, तुम्हारी अपेक्षा उसका स्वभाव ही अधिक बलवान् है। तो फिर क्या तुम एक कोनेमें बैठकर केवल रोओगी, या उसके साथ ही दौड़ पड़ोगी, पागलके उपयुक्त पगली होनेकी चेष्टा करोगी, जैसे अंधे राजाकी राजमहिषी दोनों आंखोंपर वस्त्र बांधकर स्वयं भी अंधी हो गयी थीं ? हजार ब्राह्म स्कूलमें तुम क्यों न पढ़ी होओ, आखिर हो तुम हिंदू घरकी ही लड़की, हिंदू पूर्वपुरुषोंका रक्त तुम्हारे शरीरमें

है, मुझे संदेह नहीं कि तुम शेषोक्त पथका ही अनुसरण करोगी।

मेरे तीन पागलपन हैं। पहला पागलपन यह है कि मेरा दृढ़ विश्वास है कि भगवान्‌ने जो गुण, जो प्रतिभा, जो उच्च शिक्षा और विद्या, जो धन दिया है, वह सब भगवान्‌का है, जो कुछ परिवारके भरण-पोषणमें लगता है और जो नितांत आवश्यक है उसीको अपने लिये खर्च करनेका अधिकार है, उसके बाद जो कुछ बाकी रह जाता है उसे भगवान्‌को लौटा देना उचित है। यदि मैं सब कुछ अपने लिये, सुखके लिये, विलासके लिये खर्च करूं तो मैं चोर कहलाऊंगा। हिंदू-शास्त्र कहते हैं कि जो भगवान्‌से धन लेकर भगवान्‌को नहीं देता वह चोर है। आजतक मैं भगवान्‌को दो आना दे, चौदह आना अपने सुखमें खर्च कर, हिसाब चुकता कर, सांसारिक सुखमें मत्त था। जीवनका अर्द्धांश वृथा ही गया, पशु भी अपना और अपने परिवारका उदर भर-कर कृतार्थ होता है।

मैं इतने दिनोंतक पशुवृत्ति और चौर्यवृत्ति करता आ रहा था—यह मैं समझ गया हूं। यह जानकर मुझे बड़ा अनुताप और अपने ऊपर घृणा हो रही है, अब नहीं, वह पाप जन्मभरके लिये मैंने छोड़ दिया है। भगवान्‌को देनेका अर्थ क्या है? अर्थ है धर्मकार्यमें व्यय करना। जो रुपया सरोजिनी या उषाको दिया है उसके लिये मुझे कोई अनुताप नहीं, परोपकार करना धर्म है, आश्रितकी रक्षा करना महाधर्म है, किंतु केवल भाई-बहनको देने-

से ही हिसाब नहीं चुक जाता। इस दुर्दिनमें समस्त देश मेरे द्वारपर आश्रित हैं, मेरे तीस कोटि भाई-बहन इस देशमें हैं, उनमें-से बहुतेरे अनाहारसे मर रहे हैं, अधिकांश ही कष्ट और दुःखसे जर्जरित होकर किसी प्रकार बचे हुए हैं, उनका हित करना होगा।

क्या कहती हो, इस विषयमें मेरी सहधर्मिणी बनोगी? केवल सामान्य लोगोंकी तरह खा-पहनकर, ठीक-ठीक जिस चीजकी जरूरत है उसे ही खरीदकर और सब भगवान्‌को दे दूंगा—यही मेरी इच्छा है; अगर तुम भी मत दो, त्याग स्वीकार करो तो मेरी अभिलाषा पूर्ण हो सकती है। तुम कहती हो, "मेरी कोई उन्नति नहीं हुई।" यह एक उन्नतिका पथ दिखा दिया, क्या इस पथपर चलोगी?

दूसरा पागलपन हालमें ही सिरपर सवार हुआ है, वह यह है कि चाहे जैसे भी हो, भगवान्‌का साक्षात् दर्शन प्राप्त करना ही होगा। आजकलका धर्म है, बात-बातमें मुंहसे भगवान्‌का नाम लेना, सबके सामने प्रार्थना करना, लोगोंको दिखाना कि मैं कितना धार्मिक हूं। मैं इसे नहीं चाहता। ईश्वर यदि हैं तो उनके अस्तित्वको अनुभव करनेका, उनका साक्षात् दर्शन प्राप्त करनेका कोई-न-कोई पथ होगा, वह पथ चाहे जितना भी दुर्गम क्यों न हो, उस पथसे जानेका मैंने दृढ़ संकल्प कर लिया है। हिंदूधर्मका कहना है कि अपने शरीरके, अपने मनके भीतर ही

वह पथ है। जानेके नियम भी दिखा दिये हैं, उन सबका पालन करना मैंने आरंभ कर दिया है, एक मासके अंदर अनुभव कर सका हूं कि हिंदूधर्मकी बात झूठी नहीं है, जिन-जिन चिह्नोंकी बात कही गयी है उन सबकी उपलब्धि मैं कर रहा हूं। अब मेरी इच्छा है कि तुमको भी उस पथपर ले चलूं, एकदम साथ-साथ नहीं चल सकोगी, क्योंकि तुम्हें उतना ज्ञान नहीं है, किंतु मेरे पीछे-पीछे आनेमें कोई बाधा नहीं, उस पथपर चलनेसे सिद्धि सब-को हो सकती है, किंतु प्रवेश करना अपनी इच्छापर निर्भर करता है, कोई तुम्हें पकड़कर नहीं ले जा सकता, यदि तुम्हारा मत हो तो इसके संबंधमें और भी लिखूंगा।

तीसरा पागलपन यह है कि अन्य लोग स्वदेशको एक जड़ पदार्थ, कुछ मैदान, खेत, वन, पर्वत, नदी भर समझते हैं; मैं स्वदेशको मां मानता हूं, उसकी भक्ति करता हूं, पूजा करता हूं। मांकी छातीपर बैठकर यदि कोई राक्षस रक्तपान करनेके लिये उद्यत हो तो भला लड़का क्या करता है? निश्चिंत होकर भोजन करने, स्त्री-पुत्रके साथ आमोद-प्रमोद करनेके लिये बैठ जाता है या मांका उद्धार करनेके लिये दौड़ पड़ता है? मैं जानता हूं कि इस पतित जातिका उद्धार करनेका बल मेरे अंदर है, शारीरिक बल नहीं, तलवार या बंदूक लेकर मैं युद्ध करने नहीं जा रहा हूं, ज्ञानका बल है। क्षात्र तेज एकमात्र तेज नहीं है, ब्रह्मतेज भी है, वह तेज ज्ञानके ऊपर प्रतिष्ठित

होता है। यह भाव नया नहीं है, आजकलका नहीं है, इस भावको लेकर ही मैंने जन्म ग्रहण किया है, यह भाव मेरी नस-नसमें भरा है, भगवान्ने इसी महाव्रतको पूरा करनेके लिये मुझे पृथ्वीपर भेजा है। चौदह वर्षकी उम्रमें इसका बीज अंकुरित होने लगा था, अठारह वर्षकी उम्रमें इसकी प्रतिष्ठा दृढ़ और अचल हो गयी थी। तुमने न-मौसी (चौथी मौसी) की बात सुनकर यह सोचा था कि न मालूम कहांका बदजात मेरे सरल भलेमानस स्वामीको कुपथमें खींचे ले जा रहा है। परंतु तुम्हारा भलामानस स्वामी ही उस आदमीको तथा और सैकडों आदमियोंको उस पथमें, कुपथ हो या सुपथ, खींच ले आया था तथा और भी हजारों आदमियोंको खींच ले आयेगा। कार्यसिद्धि मेरे रहते ही होगी, यह मैं नहीं कहता, पर होगी अवश्य।

अब मैं पूछता हूं, इस विषयमें तुम क्या करना चाहती हो? स्त्री स्वामीकी शक्ति होती है, तुम उषाकी शिष्या बनकर साहेब-पूजा-मंत्रका जप करोगी? उदासीन होकर स्वामीकी शक्तिको खर्व करोगी? अथवा सहानुभूति और उत्साहद्वारा दुगुना बढ़ाओगी? तुम कहोगी कि इन सब महत् कर्मोंमें भला मेरी जैसी एक सामान्य लड़की क्या कर सकती है? मुझे मनका बल नहीं, बुद्धि नहीं, उन सब बातोंका विचारतक करनेसे भय होता है। उसका एक सहज उपाय है, भगवानका आश्रय लो, ईश्वर-प्राप्तिके पथमें एक बार प्रवेश करो, तुम्हारे अंदर जो-जो अभाव हैं उन्हें

वह शीघ्र पूरा कर देंगे, जो भगवान्‌का आश्रय ग्रहण करता है उसे भय धीरे-धीरे छोड़ देता है। और अगर मेरे ऊपर विश्वास करो, दस आदमियोंकी बात न सुन यदि मेरी ही बात सुनो तो मैं तुम्हें अपना ही बल दे सकता हूं, इससे मेरे बलकी हानि तो होगी ही नहीं वरन् और वृद्धि ही होगी। हम लोग कहते हैं कि स्त्री स्वामीकी शक्ति है, इसका अर्थ है, स्वामी स्त्रीके अंदर अपनी प्रतिमूर्त्ति देख, उसमें अपनी महत् आकांक्षाकी प्रतिध्वनि पाकर दुगुनी शक्ति प्राप्त करता है।

चिरदिन क्या उसी तरह रहोगी? मैं अच्छे कपड़े पहनूंगी, अच्छा भोजन करूंगी, हंसूंगी, नाचूंगी, सब प्रकारके सुख भोगूंगी—यह जो मनकी अवस्था है इसे उन्नति नहीं कहते। आजकल हमारे देशकी स्त्रियोंके जीवनने ऐसा ही संकीर्ण और अति हेय आकार धारण किया है। तुम यह सब छोड़ दो, मेरे साथ आओ, जगत्‌में हम भगवान्‌का कार्य करनेके लिये आये हैं, उसी कार्यको आरंभ करें।

तुम्हारे स्वभावमें एक दोष है, तुम अत्यंत सरल हो। जो कोई जो कुछ कहता है उसीको तुम सुनती हो। इससे मन सर्वदा अस्थिर रहता है, बुद्धिका विकास नहीं होता, किसी काममें एकाग्रता नहीं होती। इसे सुधारना होगा, एक आदमीकी ही बात सुनकर ज्ञान संचय करना होगा, एक लक्ष्य बनाकर अविचलित चित्तसे कार्य सिद्ध करना होगा, लोगोंकी निंदा और

कटाक्षकी परवा न कर स्थिर भक्ति रखनी होगी।

और एक दोष है, तुम्हारे स्वभावका नहीं, कालका दोष। बंगालमें ऐसा ही काल आया है। लोग गंभीर बातको भी गंभीर भावसे नहीं सुनते; धर्म, परोपकार, महत् आकांक्षा, महत् प्रयास, देशोद्धार, जो कुछ गंभीर, जो कुछ उच्च और महत् है उन सब बातोंमें ही हंसी-ठट्ठा और व्यंग करते हैं, सब कुछ हंसकर उड़ा देना चाहते हैं; ब्राह्म स्कूलमें रहते-रहते तुम्हारे अंदर यह दोष थोड़ा-थोड़ा आ गया है, बारीनमें भी था, थोड़ी-बहुत मात्रामें हम सभी इस दोषसे दूषित हैं, देवघरके लोगोंमें तो यह बुरी तरह बढ़ गया है। मनके इस भावको दृढ़ मनके द्वारा भगाना होता है, तुम सहज ही ऐसा कर सकती हो, और एक बार विचार करनेका अभ्यास कर लेनेपर तुम्हारा असली स्वभाव प्रकट हो जायगा; परोपकार और स्वार्थत्यागकी ओर तुम्हारी प्रवृत्ति है, केवल एक मनके जोरका अभाव है, ईश्वरकी उपासना करनेसे वह जोर पाओगी।

यही थी मेरी वह गुप्त बात। किसीके सामने प्रकट न कर अपने मनमें, धीर चित्तसे, इन सब बातोंपर विचार करो, इसमें भय करनेका कुछ नहीं है, अवश्य ही विचार करनेकी बहुतसी बातें हैं। पहले और कुछ नहीं करना होगा, केवल रोज आध घंटा भगवान्‌का ध्यान करना होगा, उनके सामने प्रार्थना-रूपसे अपनी बलवती इच्छा प्रकट करनी होगी। इससे मन धीरे-धीरे

3

तैयार होगा। उनके सामने सदा यह प्रार्थना करनी चाहिये कि मैं स्वामीके जीवन, उद्देश्य और ईश्वर-प्राप्तिके पथमें वाधा न डाल सर्वदा सहायक होऊं, साधनभूत बनूं। यह करोगी ?

तुम्हारा—

(२)

६ दिसम्बर १९०७

प्रिय मृणालिनी,

मैंने परसों चिट्ठी पायी थी, उसी दिन रैपर भी भेजा गया था, क्यों तुम्हें नहीं मिला यह मैं समझ नहीं सका। . . . . . . यहां मुझे एक मुहूर्त्त भी समय नहीं; लिखनेका भार मेरे ऊपर है, कांग्रेस-संबंधी कार्यका भार मेरे ऊपर है, 'वंदे मातरम्' का गोलमाल मिटानेका भार मेरे ऊपर है। इतना अधिक काम है कि पूरा नहीं कर पाता। इसके अलावा मेरा अपना काम भी है, उसे भी छोड़ नहीं सकता।

मेरी एक बात सुनोगी? मेरे लिये अभी बड़ी दुश्चिंताका समय आया है, चारों ओरसे इतनी खींच-तान चल रही है कि पागल होनेकी नौबत आ गयी है। इस समय अगर तुम अस्थिर होओगी तो उससे मेरी भी चिंता और दुर्भावना बढ़ जायगी, अगर तुम उत्साह और सान्त्वन भरी चिट्ठी लिखोगी तो मुझे विशेष शक्ति प्राप्त होगी, प्रसन्न मनसे समस्त विपत्ति और भयको अतिक्रम कर सकूंगा। मैं जानता हूं कि देवघरमें अकेला रहनेसे तुम्हें कष्ट होता है, परंतु मनको दृढ़ करने और श्रद्धा-विश्वासपर निर्भर करनेपर दुःख मनके ऊपर उतना आधिपत्य नहीं जमा सकेगा।

जब तुम्हारे साथ मेरा विवाह हुआ है, तुम्हारे भाग्यमें यह दुःख अनिवार्य है, बीच-बीचमें विच्छेद होगा ही, कारण साधारण मनुष्य-की तरह परिवार और स्वजनोंके सुखको ही मैं जीवनका मुख्य उद्देश्य नहीं बना सकता। ऐसी अवस्थामें मेरा धर्म ही तुम्हारा धर्म है, मेरे निर्दिष्ट कार्यकी सफलतामें ही अपना सुख माननेके सिवा तुम्हारे लिये और कोई उपाय नहीं। और एक बात, जिन लोगोंके साथ तुम अभी रहती हो उनमेंसे बहुतेरे तुम्हारे और मेरे गुरुजन हैं, वे लोग यदि कटु वाक्य कहें, अनुचित बात कहें तो भी उनके ऊपर क्रोध मत करना। और जो कुछ वे कहें उसे ऐसा मत विश्वास करो कि वह सब कुछ उनके मनकी बात है अथवा बिना सोचे तुम्हें दुःख देनेके लिये कहते हैं। बहुत बार क्रोधके समय बात निकल जाती है, उसे पकड़े रहना अच्छा नहीं। यदि रहना एकदम कठिन मालूम हो तो मैं गिरीश बाबूसे कहूंगा, जबतक मैं कांग्रेस-में हूं तबतक तुम्हारे नानाजी घरपर रह सकते हैं।

मैं आज मेदिनीपुर जाऊंगा। वहांसे लौटनेपर यहांकी सारी व्यवस्था करके सूरत जाऊंगा। संभवतः १५ या १६ तारीखको जा सकूंगा। दूसरी जनवरीको वापस आऊंगा।

तु०

(३)

२३ स्काट्स लेन, कलकत्ता।
१७ फरवरी १९०८

प्रिय मृणालिनी,

बहुत दिनोंसे चिट्ठी नहीं लिखी, यह मेरा बहुत पुराना दोष है, इसके लिये यदि तुम निज गुणसे क्षमा न करो तो मेरे लिये और क्या उपाय है? जो मज्जागत हो जाता है वह एक दिनमें नहीं निकलता, इस दोषको सुधारनेमें संभवतः मेरा यह जीवन बीत जायगा।

८ जनवरीको आनेकी बात थी, पर आ नहीं सका, मेरी इच्छासे ऐसा नहीं हुआ। जहां भगवान् ले गये वहीं जाना पड़ा। इस बार मैं अपने कामसे नहीं गया था, उन्हींके काममें था। अब मेरे मनकी अवस्था दूसरे प्रकारकी हो गयी है, उस बातको इस पत्रमें प्रकट नहीं करूंगा। तुम यहां आओ, उस समय जो कुछ कहना है वह कहूंगा; केवल यही बात अभी कहूंगा कि अब इसके बाद मैं अपनी इच्छाके अधीन नहीं रहूंगा, जहां भगवान् मुझे ले जायंगे वहीं मुझे कठपुतलीकी तरह जाना पड़ेगा, जो करायेंगे वही कठपुतलीकी तरह करना होगा। अभी इस बातका अर्थ समझना तुम्हारे लिये कठिन होगा, परंतु कहना आवश्यक है, अन्यथा मेरी गतिविधि

तुम्हारे आक्षेप और दुःखका कारण हो सकती है। तुम समझोगी कि मैं तुम्हारी उपेक्षा करके काम कर रहा हूं, परंतु ऐसा मत समझना। आजतक मैंनें तुम्हारे प्रति बहुतसे अपराध किये हैं, तुम जो उनके कारण असंतुष्ट हुई थीं सो स्वाभाविक ही था, परंतु अब मुझे स्वाधीनता नहीं है, अबसे तुम्हें यह समझना होगा कि मेरे सभी कार्य मेरी इच्छापर निर्भर न कर भगवान्के आदेश-से ही हो रहे हैं। तुम जब आओगी तब मेरा तात्पर्य हृदयंगम कर सकोगी। आशा करता हूं कि भगवान्ने अपनी अपार करुणासे मुझे जो आलोक दिखाया है उसे तुम्हें भी दिखायेंगे, परंतु वह उन्हींकी इच्छापर निर्भर करता है। यदि तुम मेरी सह-धर्मिणी होना चाहती हो तो तुम प्राणपण चेष्टा करो जिसमें वह तुम्हारी एकांत इच्छावश तुमको भी करुणाका पथ दिखावें। यह पत्र किसीको भी देखनेके लिये मत देना, कारण जो बात मैंनें लिखी है वह अत्यंत गोपनीय है। तुम्हारे सिवा और किसीको भी मैंने नहीं कहा है, कहना मना है। आज बस इतना ही।

तुम्हारा स्वामी।

पुनश्च—सांसारिक बातें सरोजिनीको लिखी हैं, अलग तुमको लिखना अनावश्यक है, पत्र देखनेसे ही वे बातें समझ जाओगी।

पांडीचेरीका पत्र

निवेदन

श्रीअरविंदके छोटे भाई श्रीवारींद्रकुमार घोषको अलीपुर-बम-केस में आजीवन कालेपानीकी सजा हुई थी। जब वह प्रायः १२ वर्षके बाद कालेपानीसे रिहा होकर देश वापस आये तब उनकी एक चिट्ठीके उत्तरमें श्रीअरविंदने उन्हें एक चिट्ठी लिखी। इस चिट्ठीको श्रीवारींद्रकुमारने पहले तो एक बंगला पत्रिकामें और पीछे पुस्तकाकार प्रकाशित किया। उसी पुस्तकका यह हिंदी अनुवाद है। मूल चिट्ठीमें श्रीअरविंदने बहुतसे अंगरेजी शब्दोंका व्यवहार किया था इसलिये उन्हें, बंगलाकी तरह, हिंदीमें भी ज्यों-का-त्यों रख दिया गया है, परंतु उनके आगे उनका अर्थ कोष्ठकमें दे दिया गया है जिसमें पाठकोंको चिट्ठीका भाव समझनेमें कोई असुविधा न हो।

—प्रकाशक

७ अप्रैल १९२०

प्रिय—

तुम्हारी चिट्ठी मिल गयी थी, पर अबतक उत्तर देना संभव नहीं हुआ। आज जो लिखने बैठा हूं यह भी एक miracle (चमत्कार) है, क्योंकि मेरा चिट्ठी लिखना संभव होता है once in a blue moon (कदाचित् ही); विशेषकर बंगलामें लिखना, जिसे इधर पांच-सात वर्षोंमें एक बार भी नहीं किया। (इसे) समाप्त कर यदि post (डाक) में डाल सकूं तो ही यह miracle (आश्चर्यजनक कार्य) पूरा होगा।

पहले तुम्हारे योगकी बात लें। तुम मुझे ही अपने योगका भार देना चाहते हो, मैं भी लेनेके लिये तैयार हूं। इसका अर्थ है–जो मुझको और तुमको, प्रकट रूपमें हो या गुप्त रूपमें, अपनी भागवती शक्तिके द्वारा चला रहे हैं उनको ही देना। पर इसका यह फल अवश्यंभावी जानना कि उन्हींका दिया हुआ जो मेरा योग-मार्ग है, जिसे हम पूर्णयोग कहते हैं, उसी मार्गसे चलना होगा। ....जिस चीजसे मैंने आरंभ किया था, लेलेने जो कुछ दिया था....वह सब था पथ खोजनेकी अवस्था, इधर-उधर घूम-फिरकर देखना; पुराने सभी खंड योगोंमेंसे इसको और उसको

छूना उठाना, हाथमें लेकर परीक्षा करना; एककी एक तरहसे पूरी अनुभूति लेकर दूसरेका अनुसरण करना।

उसके बाद पांडीचेरी आनेपर यह चंचल अवस्था चली गयी। अंतर्यामी जगद्गुरुने मुझे अपने पथका पूर्ण निर्देश दिया। उसकी संपूर्ण theory (सिद्धांत) यह है कि योगशरीरके दस अंग हैं; इन दस वर्षोंसे उन्हींका development (विकास) करा रहे हैं अनुभूतिके द्वारा; अभीतक खतम नहीं हुआ है। और दो वर्ष लग सकते हैं।

यह योगमार्ग क्या है—यह पीछे लिखूंगा; अथवा तुम अगर यहां आओ तो उस विषयमें बातचीत होगी। इस विषयमें लिखनेकी अपेक्षा जबानी बातें करना अधिक अच्छा है। अभी मैं इतना ही कह सकता हूं कि पूर्ण ज्ञान, पूर्ण कर्म और पूर्ण भक्तिके सामंजस्य और ऐक्यको मानसिक भूमि (level) से ऊपर उठाकर मनके परे विज्ञान-भूमिमें पूर्ण, सिद्ध करना है इसका मूल-तत्त्व। पुराने योगोंका दोष यह था कि वे मन-बुद्धिको जानते और आत्माको जानते; मनके अंदर आध्यात्मिक अनुभूति प्राप्त कर संतुष्ट रहते। किंतु मन खंडको ही आयत्त कर सकता है; अनंत, अखंडको संपूर्ण रूपसे नहीं ग्रहण कर सकता। उसे ग्रहण करनेके लिये समाधि, मोक्ष, निर्वाण इत्यादि ही मनके उपाय हैं, और कोई उपाय नहीं। उस लक्ष्यहीन मोक्षको कोई-कोई आदमी प्राप्त जरूर कर सकते हैं, किंतु उससे क्या लाभ? ब्रह्म, आत्मा,

भगवान् तो हैं ही। भगवान् मनुष्यके अंदर जो कुछ चाहते हैं वह है उन्हें यहां ही मूर्त्तिमान् करना, व्यष्टिमें, समष्टिमें—to realise God in life (जीवन-क्षेत्रमें भगवान्को अभिव्यक्त करना)।

पुरानी योगप्रणालियां अध्यात्म और जीवनके बीच सामंजस्य या ऐक्य स्थापित नहीं कर सकीं; जगत्को माया या अनित्य लीला कहकर उन्होंने उड़ा दिया है। इसका फल हुआ है जीवनी-शक्तिका ह्रास, भारतकी अवनति। गीतामें जिसे कहा गया है **'उत्सीदेयुरिमे लोकाः न कुर्यां कर्म चेदहम्"**, भारतका 'इमे लोकाः' सचमुचमें उत्सन्न हो गया है। कुछ संन्यासी और वैरागी साधु सिद्ध, मुक्त हो जायं, कुछ भक्त प्रेमसे, भावसे, आनंदसे अधीर होकर नृत्य करें, और समस्त जाति प्राणहीन, बुद्धिहीन होकर घोर तमोभावमें डूब जाय, यह भला कैसी अध्यात्म-सिद्धि है? पहले मानसिक level (स्तर) पर सभी खंड अनुभूतियोंको प्राप्त कर, मनको अध्यात्मरससे परिप्लावित, अध्यात्मके आलोकसे आलोकित करना होता है, फिर उसके बाद ऊपर जाना होता है। ऊपर अर्थात् विज्ञान-भूमिमें उठे बिना जगत्का अंतिम रहस्य जानना असंभव है; जगत्की समस्या solved (हल) नहीं होती। वहीं-पर आत्मा और जगत्, अध्यात्म और जीवन—इस द्वंद्वकी अविद्या-का अंत होता है। उस समय जगत् फिर माया नहीं दिखायी देता; जगत् भगवान्की सनातन लीला, आत्माका नित्य विकास

प्रतीत होता है। उसी समय भगवान्‌को पूर्ण रूपसे जानना, पाना संभव होता है; गीतामें जिसे कहा है "**समग्रं मां ज्ञातुम्।**" अन्नमय देह, प्राण, मन-बुद्धि, विज्ञान और आनंद—ये आत्माकी पांच भूमियां हैं। मनुष्य जितना ही ऊपर उठता है उतना ही उसके spiritual evolution (आध्यात्मिक विकास) की चरम सिद्धिकी अवस्था समीप आती जाती है। विज्ञानमें पहुंच जानेपर आनंदमें जाना सहज हो जाता है; अखंड अनंत आनंदकी अवस्थामें दृढ़ प्रतिष्ठा हो जाती है; केवल त्रिकालातीत परब्रह्ममें नहीं—देहमें, जगत्‌में, जीवनमें। पूर्ण सत्, पूर्ण चैतन्य, पूर्ण आनंद विकसित होकर जीवनमें मूर्त्त होते हैं। यह प्रयास ही मेरे योगमार्गका central clue (मूल बात) है।

ऐसा होना आसान नहीं है। इन पंद्रह वर्षोंके बाद मैं अभी-तक विज्ञानके तीन स्तरोंमेंसे निम्नतर स्तरमें पहुंचकर नीचेकी सभी वृत्तियोंको उसके अंदर खींच ले जानेका उद्योग कर रहा हूं। पर जब यह सिद्धि पूर्ण होगी तब भगवान् मेरे through (द्वारा) दूसरोंको थोड़े परिश्रमसे ही विज्ञान-सिद्धि देंगे, इसमें कुछ भी संदेह नहीं। उसी समय मेरे असली कार्यका आरंभ होगा। मैं कर्मसिद्धिके लिये अधीर नहीं हूं। जो होना है वह भगवान्‌द्वारा निर्दिष्ट समयपर होगा, उन्मत्तकी नाईं दौड़कर क्षुद्र अहमिकाकी शक्तिके साथ कर्मक्षेत्रमें कूद पड़नेकी प्रवृत्ति मुझमें नहीं है। यदि कर्मसिद्धि न भी हो तो भी मैं धैर्यच्युत नहीं हूंगा; यह कर्म

मेरा नहीं ह, भगवान्‌का है। मैं और किसीकी भी पुकार नहीं सुनूंगा; भगवान् जब चलावेंगे तभी मैं चलूंगा।

बंगाल अभी ठीक तैयार नहीं हुआ है, यह मैं जानता हूं। जिस अध्यात्मकी बाढ़ आयी है वह है बहुत-कुछ पुरानेका ही नया रूप, वह वास्तविक रूपांतर नहीं है। अवश्य ही इसकी भी जरूरत थी। बंगाल सभी पुराने योगोंको अपने अंदर जगाकर उनका संस्कार exhaust (क्षय) करके असली सार-तत्त्वको लेकर जमीन उर्वर बना रहा है। पहले थी वेदांतकी बारी—अद्वैतवाद, संन्यास, शंकरकी माया इत्यादि। अभी जो हो रहा है, अभी है वैष्णव धर्मकी बारी—लीला, प्रेम, भावके आनंदमें मत्त हो जाना। यह सब अत्यंत प्राचीन है, नवयुगके लिये अनुपयोगी है, यह सब नहीं टिक सकेगा, कारण ऐसी उत्तेजना टिकने लायक नहीं। अवश्य ही वैष्णव भावका यही गुण है कि यह भगवान्‌के साथ जगत्‌का एक संबंध बनाये रखता है, इसमें जीवनका एक अर्थ होता है; (किंतु) यह खंड भाव होनेके कारण इसमें पूर्ण संबंध, पूर्ण अर्थ नहीं है। तुमने जो दलबंदीका भाव देखा है उसका होना अनिवार्य है। मनका धर्म ही है इस खंडको लेकर पूर्ण कहना, अन्य सभी खंडोंको बहिष्कृत करना। जो सिद्ध पुरुष भाव-को ले आते हैं वह खंड भावका अवलंबन करनेपर भी पूर्ण भावका पता कुछ-कुछ रखते हैं—(पूर्णको) मूर्त्त न कर सकनेपर भी। किंतु शिष्योंको वह नहीं मिलता, (क्योंकि गुरुमें वह तत्त्व) मूर्त्त

नहीं होता। गठरी बांध रहा है तो बांधे, जिस दिन भगवान् देशमें पूर्ण रूपसे अवतीर्ण होंगे उस दिन गठरी अपने-आप खुल जायगी। यह सब है अपूर्णताका, कच्ची अवस्थाका लक्षण; उससे मैं विचलित नहीं होता। अध्यात्म-भाव देशमें खेले, चाहे जिस रूपमें क्यों न हो, चाहे जितने दल क्यों न बनें—पीछे देखा जायगा। यह नवयुगका शैशव है, बल्कि यों कहें कि embryonic अवस्था (भ्रूणावस्था) है। अभी आभासमात्र है, आरंभ नहीं।

***

इस योगकी विशेषता यही है कि सिद्धि थोड़ी ऊपर उठे बिना भित्ति भी पक्की नहीं होती। जो लोग (मेरे योगकी) साधना करते हैं उनमें पहले बहुतसे पुराने संस्कार थे, कुछ तो दूर हुए हैं पर कुछ अभीतक वर्तमान हैं। पहले (तुम लोगोंमें) था संन्यासका संस्कार, (तुम लोगोंने) अरविंद-मठ स्थापित करना चाहा था; अब (तुम लोगोंकी) बुद्धिने मान लिया है कि संन्यास नहीं चाहिये, (किंतु) प्राणमेंसे अभीतक उस पुरातनकी छाप एक-दम नहीं गयी है। इसी कारण संसारमें रहकर त्यागी संसारी होनेकी बात कहते हो। तुम लोगोंने कामनात्यागकी आवश्यकता-को समझ लिया है, किंतु कामनात्याग और आनंदभोगके सामंजस्य-को पूर्णरूपेण नहीं पकड़ पाये हो। और मेरे योगको तुम लोगोंने लिया था ठीक वैसे जैसे कि बंगालीका साधारण स्वभाव होता है—ज्ञानकी दृष्टिसे उतना नहीं जितना कि भक्तिकी दृष्टिसे, कर्मकी

दृष्टिसे। ज्ञान कुछ-कुछ हुआ है, परंतु बहुत-कुछ बाकी है, और भावुकताका कुहासा dissipated (छिन्नभिन्न) नहीं हुआ है—दूर नहीं हुआ है। तुम लोग सात्त्विकताके घेरेको पूरी मात्रामें नहीं काट सके हो, अहं अभीतक वर्तमान है; थोड़ेमें कह सकते हैं, उसका development (विकास) नहीं हुआ है। मुझे भी कोई जल्दबाजी नहीं, मैं तुम लोगोंको निजी स्वभावके अनुसार ही develop (विकसित) होने दे रहा हूं। मैं एक ही सांचेमें सब-को ढालना नहीं चाहता। असली चीज ही सबमें एक होगी, नाना प्रकारसे नाना रूपोंमें प्रस्फुटित होगी। सब लोग भीतरसे grow (बढ़) रहे हैं, गठित हो रहे हैं। मैं बाहरसे गढ़ना नहीं चाहता। तुम लोगोंने मूलको पाया है, और सब (पीछे) आयेगा।

मैं भेदप्रतिष्ठ समाज नहीं चाहता, आत्मप्रतिष्ठ—आत्माके ऐक्यकी मूर्त्ति—संघ चाहता हूं, इसी idea या भावको लेकर देव-संघ नाम दिया गया है, जो लोग देवजीवन चाहते हैं उन्हींका संघ देवसंघ है। ऐसा संघ एक जगह स्थापित करके पीछे सारे देशमें फैला देना होगा। ऐसे प्रयासके ऊपर यदि अहमिकाकी छाप पड़े तो फिर संघ दलमें परिणत हो जायगा। यह धारणा सहज ही की जा सकती है कि जो (शुद्ध) संघ अंतमें दिखायी देगा यही वह है; सब कुछ होगा मानों एकमात्र इसी केंद्रकी परिधि, जो लोग इसके बाहर हैं वे भीतरके लोग नहीं; (अथवा भीतरके) होनेपर भी वे भ्रांत हैं, हमारा जो वर्तमान भाव है उसके साथ

उनका मेल न होनेके कारण (मानों भ्रांत हैं)।

शायद तुम कहोगे कि संघकी क्या आवश्यकता है? मुक्त होकर सर्व घटमें विद्यमान रहूंगा; सब एकाकार होकर रहें, उस बृहत् एकाकारके अंदर ही जो कुछ होना हो वह हो। यह बात ठीक ही है; किंतु (यह) सत्यकी केवल एक दिशा है। हमारा कारबार केवल निराकार आत्माके साथ ही नहीं है, जीवनको भी चलाना होगा; और मूर्त्तिके बिना जीवनकी effective (फलप्रद) गति नहीं। अरूप जो मूर्त्त हुआ है, उसका यह नामरूपग्रहण मायाकी मनमौज नहीं है; रूपका नितांत प्रयोजन होनेके कारण ही रूप ग्रहण किया गया है, हम जगत्के किसी भी कामको छोड़ना नहीं चाहते; राजनीति, वाणिज्य, समाज, काव्य, शिल्प-कला, साहित्य सब कुछ रहेगा; इन सबको नवीन प्राण, नवीन आकार देना होगा।

राजनीतिको मैंने क्यों छोड़ दिया है? क्योंकि हम लोगोंकी राजनीति भारतकी असली चीज नहीं है, विलायती आमदनी है, विलायती ढंगका अनुकरणमात्र है। अवश्य ही इसकी भी जरूरत थी। हम लोगोंने भी विलायती ढंगकी राजनीति की है; अगर न करते तो देश उठता ही नहीं; हमें experience (अनु-भव) प्राप्त न होता और न हमारा पूर्ण development (विकास) ही होता। अभी भी उसकी जरूरत है, बंगालमें उतनी नहीं जितनी भारतके अन्य प्रदेशोंमें। किंतु अब वह समय

आ गया है जब छायाका विस्तार न कर वस्तुको पकड़ना होगा, भारतके सच्चे आत्माको जगाकर उसीके अनुरूप सब कर्मोंको करना होगा।

आजकल लोग राजनीतिको spiritualise (अध्यात्मभावापन्न) करना चाहते हैं......उसका फल होगा—अगर कोई स्थायी फल हो तो—एक प्रकारका Indianised Bolshevism (भारतीय बोलशेविज्म)। उस प्रकारके कार्यमें भी मुझे कोई आपत्ति नहीं; जिसकी जैसी प्रेरणा हो वह वैसा ही करे। परंतु यह भी असली चीज नहीं है; अशुद्ध रूपके अंदर spiritual (आध्यात्मिक) शक्ति ढालना कच्चे घड़ेमें कारणोदधिका जल ढालनेके समान है, वह कच्ची चीज फूट जायगी, जल चारों ओर फैलकर नष्ट हो जायगा, अथवा अध्यात्म-शक्ति evaporate (लुप्त) हो जायगी और वह अशुद्ध रूप ही रह जायगा; सभी क्षेत्रोंमें यही बात है। spiritual influence (आध्यात्मिक प्रेरणा) मैं दे सकता हूं, पर वह शक्ति expended (खर्च) होगी शिवमंदिरमें बंदरकी मूर्त्ति गढ़कर स्थापित करनेमें। यह संभव है कि वह बंदर प्राण-प्रतिष्ठाके फलस्वरूप शक्तिमान् होकर, भक्त हनुमान् बनकर, जितने दिन वह शक्ति रहे उतने दिन, रामके बहुतसे कार्य करे; परंतु हम भारत-मंदिरमें चाहते हैं हनुमान्को नहीं—देवता, अवतार, स्वयं रामको।

सबके साथ मैं मिल सकता हूं—किंतु सबको सच्चे पथपर

खींच लानेके लिये, अपने आदर्शके spirit (भाव) और रूपको अक्षुण्ण रखते हुए। अगर ऐसा न हो तो मैं पथभ्रष्ट हो जाऊंगा, वास्तविक कार्य नहीं होगा। individually (व्यक्तिगत रूपसे) सर्वत्र रहते हुए कुछ होगा अवश्य, किंतु संघ-रूपमें सर्वत्र रहते हुए उससे सौगुना अधिक होगा। पर अभीतक वह समय नहीं आया है। अगर ताबड़तोड़ रूप देनेकी चेष्टा करूं तो ठीक जो चाहता हूं वह नहीं होगा। सबसे पहले संघका एक साधारण आरंभिक रूप होगा; जिन लोगोंने आदर्श पाया है वे ऐक्यबद्ध होकर नाना स्थानोंमें कार्य करेंगे; पीछे spiritual commune (आध्यात्मिक संघ) की तरह रूप देकर, संघबद्ध होकर सब कर्मों-को आत्माके अनुरूप, युगके अनुरूप आकृति देंगे। कठोरतापूर्वक बंधा हुआ रूप नहीं, अचलायतन नहीं, स्वाधीन रूप, समुद्रकी तरह जो फैल सकेगा, नाना रूप ग्रहण कर, इसको घेरकर, उसको प्लावित कर, सबको आत्मसात् कर लेगा; करते-करते spiritual community (देवजाति) तैयार हो जायगी। यही है मेरा वर्तमान idea (भाव), अभी भी पूरी तरह develop (विकसित) नहीं हुआ है। सब भगवान्के हाथमें है, वह जो चाहें करावें।

अब तुम्हारे पत्रकी कुछ विशेष-विशेष बातोंकी आलोचना करूंगा। अपने योगके विषयमें जो तुमने लिखा है उस विषयमें मैं इस पत्रमें विशेष कुछ नहीं लिखना चाहता, मुलाकात होनेपर उसकी चर्चा करनेमें सुविधा होगी। देहको शवके रूपमें देखना

संन्यासके निर्वाण-पथका लक्षण है, इस भावको लेकर संसार नहीं किया जा सकता, सब वस्तुओंमें आनंद होना चाहिये—जैसे आत्मा-में वैसे शरीरमें भी। देह चैतन्यमय है, देह भगवान्‌का रूप है। जगत्‌में जो कुछ है उसमें भगवान्‌को देखनेसे, **'सर्वमिदं ब्रह्म—वासुदेवः सर्वमिति'** यह दर्शन प्राप्त करनेसे विश्वानंद मिलता है। शरीरमें भी उसी आनंदकी मूर्त्त तरंगें उठती हैं; इस अवस्थामें अध्यात्मभावसे पूर्ण होकर संसार, विवाह सब कुछ किया जा सकता है, सभी कर्मोंमें प्राप्त होता है भगवान्‌का आनंदमय विकास। (मैं अपने अंदर) वहुत दिनोंसे मानसिक भूमिकामें मनके, इंद्रियोंके सभी विषयों और अनुभूतियोंको आनंदमय वना रहा हूं। अब वह सब विज्ञानानंदका (supramental) रूप धारण कर रहा है। इसी अवस्थामें सच्चिदानंदका पूर्ण दर्शन और अनुभूति प्राप्त होती है।

देवसंघकी बात कहते हुए तुमने लिखा है—"मैं देवता नहीं हूं, बहुत पीट-पाटकर सान दिया हुआ लोहा हूं।" . . . . देवता कोई नहीं है, फिर भी प्रत्येक मनुष्यके अंदर देवता हैं, उन्हींको प्रकट करना देवजीवनका लक्ष्य है। यह सभी कर सकते हैं। मानता हूं कि बड़ा आधार भी होता है। तुमने अपने विषयमें जो लिखा है उसे मैं accurate (ठीक) नहीं मानता। पर आधार चाहे जैसा भी हो, एक बार यदि भगवान्‌का स्पर्श मिल जाय, आत्मा यदि जाग्रत् हो जाय, तो फिर 'वड़ा-छोटा' इन सबसे

विशेष कुछ आता-जाता नहीं। अधिक बाधाएं हो सकती हैं, अधिक समय लग सकता है, विकासमें तारतम्य हो सकता है, इसका भी कुछ ठीक नहीं। भीतरके देवता उन सब बाधाओं, न्यूनताओंका हिसाब नहीं रखते, ठेलकर ऊपर उठ आते हैं। मेरे अंदर भी क्या कम दोष थे, मनकी, चित्तकी, प्राणकी, देहकी क्या कम बाधाएं थीं? क्या समय नहीं लगा? भगवान्‌ने क्या कम पीटा है? दिन-पर-दिन, मुहूर्त्त-पर-मुहूर्त्त देवता हुआ हूं या क्या हुआ हूं—यह मैं नहीं जानता; पर कुछ हुआ हूं या हो रहा हूं—भगवान् गढ़ना चाहते हैं बस यही यथेष्ट है। सबकी यही बात है।....हमारी शक्ति नहीं, भगवान्‌की शक्ति ही इस योगकी साधिका है।

मैं जो कुछ बहुत दिनोंसे देख रहा हूं उसीकी दो-एक बातें संक्षेपमें कहना चाहता हूं। मेरी यह धारणा है कि भारतकी दुर्बलताका प्रधान कारण पराधीनता नहीं है, दरिद्रता नहीं है, अध्यात्मबोध या धर्मका अभाव नहीं है, बल्कि चिंतनशक्तिका ह्रास है—ज्ञानकी जन्मभूमिमें अज्ञानका विस्तार है। सर्वत्र ही देखता हूं inability या unwillingness to think (विचार करनेकी अक्षमता या अनिच्छा) अथवा चिंतन-"फोबिया"। मध्ययुगमें चाहे जो हो, पर आजकल तो यह भाव घोर अवनतिका लक्षण है। मध्ययुग था रात्रिकाल, अज्ञानीकी विजयका दिन। आधुनिक जगत्‌में अब ज्ञानकी विजयका युग है। जो जितना अधिक

विचार करता है, विश्वके सत्यको गहराईमें पैठकर सीख सकता है, उसकी शक्ति उतनी ही बढ़ जाती है। यूरोपको देखो, दो चीजें देखोगे—अनंत विशाल चिंतनका समुद्र और प्रकांड वेगवती अथच सुश्रृंखल शक्तिका खेल। यूरोपकी समस्त शक्ति यहीं है; उसी शक्तिके वलसे वह जगत्को ग्रस रहा है; हमारे प्राचीन तपस्वियोंकी तरह जिनके प्रभावसे विश्वके देवता भी भयभीत, संदिग्ध, वशीभूत थे। लोग कह देते हैं कि यूरोप ध्वंसकी ओर दौड़ा जा रहा है। मैं इस बातको नहीं मानता। यह जो विप्लव है, यह जो उलट-पलट है—यह सब नवसृष्टिकी पूर्वावस्था है।

उसके बाद भारतको देखो। कुछ solitary giants (जहां-तहां रहनेवाले प्रतिभाशाली पुरुषों) के अतिरिक्त सर्वत्र ही .... सीधे-सरल मनुष्य हैं, अर्थात् average man (साधारण मनुष्य) हैं, जो विचार करना नहीं चाहते, विचार कर ही नहीं सकते, जिनमें बिंदुमात्र शक्ति नहीं है, है केवल क्षणिक उत्तेजना। भारत चाहता है सरल विचार, सीधी बात; यूरोप चाहता है गभीर विचार, गंभीर बात। सामान्य कुली-मजूर भी विचार करता है, सब कुछ जानना चाहता है, मोटे तौरपर जानकर भी संतुष्ट नहीं होता, गहराईमें जाकर देखना चाहता है। प्रभेद यही है कि यूरोपकी शक्ति और चिंतनकी fatal limitation (अलंघ्य सीमा) है। अध्यात्मक्षेत्रमें आकर उसकी चिंतनशक्ति और नहीं

चलती। वहांपर यूरोपको दिखायी देता है सब कुछ गोरखधंधा, nebulous metaphysics (कुहेलिकामय तत्त्वशास्त्र), yogic hallucination (योगजन्य मतिभ्रम); धुएंमें आंख रगड़ते हुए वह कुछ भी निश्चित नहीं कर पाता। अवश्य ही आजकल इस limitation (सीमा)को भी surmount (अतिक्रम) करनेकी चेष्टा यूरोपमें कम नहीं हो रही है। हममें अध्यात्मबोध है हमारे पूर्वपुरुषोंके गुणवश; और जिसमें यह बोध है उसके हाथके पासमें ही है ऐसा ज्ञान, ऐसी शक्ति जिसकी एक फूंकसे ही यूरोपकी समस्त प्रकांड शक्ति तिनकेके समान उड़ जा सकती है। किंतु उस शक्तिको पानेके लिये शक्तिकी (उपासनाकी) जरूरत है। परंतु हम शक्तिके उपासक नहीं हैं, सहजके उपासक हैं, (पर) सहजमें शक्ति नहीं मिलती। हमारे पूर्वपुरुषोंने विशाल विचार-समुद्रमें तैरकर विशाल ज्ञान प्राप्त किया था, विशाल सभ्यता खड़ी की थी। रास्ता चलते-चलते उनमें अवसाद आ जान, उनके क्लांत हो जानेके कारण विचारका वेग कम हो गया, साथ-ही-साथ शक्तिका वेग भी कम हो गया। हमारी सभ्यता हो गयी है अचलायतन, बाह्य धर्मकी कट्टरता, अध्यात्मभाव हो गया है एक क्षीण आलोक या क्षणिक उत्तेजनाकी तरंग। यह अवस्था जबतक रहेगी तबतक भारतका स्थायी पुनरुत्थान होना असंभव है।

बंगाल देशमें ही इस दुर्बलताकी चरम अवस्था दिखायी देती है। बंगालीमें क्षिप्र बुद्धि है, भावकी capacity (सामर्थ्य) है,

intuition (अंतर्ज्ञान है); इन्हीं गुणोंके कारण वह भारतमें श्रेष्ठ है। ये सभी गुण चाहियें, किंतु ये ही यथेष्ट नहीं हैं। इनके साथ यदि विचारकी गभीरता, धीर शक्ति, वीरोचित साहस, दीर्घ परिश्रमकी क्षमता और आनंद आकर मिल जायं तो बंगाली केवल भारतका ही क्यों, जगत्का नेता हो जायगा। किंतु बंगाली उसे नहीं चाहता, सहज ही काम बना लेना चाहता है, विचार किये बिना ही ज्ञान, परिश्रम किये बिना ही फल, सहज साधना करके सिद्धि प्राप्त करना चाहता है। उसका संबल है भावकी उत्तेजना, किंतु ज्ञानशून्य भावातिशय्य ही है इस रोगका लक्षण, उसके बाद अवसाद, तमोभाव। एक ओर तो देशकी क्रमशः अवनति हुई है, जीवनी शक्तिका ह्रास हुआ है; फिर बंगालीके अपने देशमें क्या हुआ है—खानेके लिये अन्न नहीं मिलता, पहननेके लिये कपड़ा नहीं मिलता, चारों ओर हाहाकार मच रहा है, धन-दौलत, वाणिज्य-व्यवसाय, जगह-जमीन, खेती-बारीतक दूसरोंके हाथोंमें जाना आरंभ हो गया है। (हमने) शक्ति-साधना छोड़ दी है। शक्तिने भी हमें छोड़ दिया है। प्रेमकी साधना करते हैं, परंतु जहां ज्ञान और शक्ति नहीं वहां प्रेम भी नहीं रहता; संकीर्णता, क्षुद्रता आ जाती है, क्षुद्र, संकीर्ण मन, प्राण और हृदयमें प्रेमका स्थान नहीं। भला प्रेम कहां है बंगदेशमें? जितना झगड़ा, मनोमालिन्य, ईर्ष्या, घृणा, दलबंदी इस देशमें है, भेदक्लिष्ट भारतमें और कहीं भी उतना नहीं है।

आर्यजातिके उदार वीरयुगमें इतना हो-हल्ला, नाच-कूद नहीं थी, जो प्रयास वे आरंभ करते वह बहु शताब्दियोंतक स्थायी रहता। बंगालीका प्रयास दो दिन स्थायी रहता है।

तुम कहते हो कि जरूरत है भावोन्मादकी, देशको मतवाला बना देनेकी। राजनीतिक क्षेत्रमें यह सब मैंने किया था, स्वदेशीके समय जो किया था सब धूलिसात् हो गया है। अध्यात्म-क्षेत्रमें क्या उससे शुभतर परिणाम होगा? मैं यह नहीं कहता कि कोई भी फल नहीं हुआ है। हुआ है; जितना भी movement (आंदोलन) होता है उसका कुछ फल होता ही है, पर वह फल होता है अधिकांशमें possibility (संभावनाओं) की वृद्धि; स्थिर भावसे actualise (वास्तव रूप प्रदान) करनेकी यह ठीक रीति नहीं है। इसी कारण अब मैं emotional excitement (प्राणकी उत्तेजना, भावोन्माद), भाव, मनको मतवाला बनानेको base (आधार) बनाना नहीं चाहता। अपने योगकी प्रतिष्ठा करनेके लिये मैं चाहता हूं विशाल वीरसमता; उसी समतामें प्रतिष्ठित आधारके अंदर सभी वृत्तियोंसे पूर्ण, दृढ़, अविचल शक्ति; शक्ति-समुद्रमें ज्ञानसूर्यकी रश्मियोंका विस्तार, उसी आलोकमय विस्तारमें अनंत प्रेम, आनंद, ऐक्यकी स्थिर ecstasy (तीव्रानंद)। लाख-लाख शिष्य मैं नहीं चाहता, एक सौ क्षुद्र-अहंशून्य पूरे मनुष्य यदि भगवान्‌के यंत्रके रूपमें मुझे मिल जायं तो यही यथेष्ट है। प्रचलित गुरुगिरीके ऊपर मेरा विश्वास नहीं है; मैं गुरु होना

नहीं चाहता। मेरे स्पर्शसे जगकर हो, चाहे दूसरेके स्पर्शसे जगकर हो, अगर कोई अपने भीतरसे अपने सुप्त देवत्वको प्रकट करे, भागवत जीवन लाभ करे तो बस यही मैं चाहता हूं। ऐसे मनुष्य ही इस देशको ऊपर उठावेंगे।

इस lecture (भाषण) को पढ़कर यह मत समझना कि मैं बंगालके भविष्यके विषयमें निराश हो गया हूं। वे लोग जो यह कहते हैं कि बंगालमें ही इस बार महाज्योतिका विकास होगा, ऐसी आशा मैं भी रखता हूं। अवश्य ही other side of the shield (विपरीत दिशाको), कहां दोषत्रुटि है, न्यूनता है यह भी देखनेकी चेष्टा की है। यह सब रहनेसे वह ज्योति महाज्योति भी नहीं होगी, स्थायी भी नहीं होगी।

इस असाधारण लंबी चिट्ठीका तात्पर्य यही है कि मैं भी पोटली बांध रहा हूं। परंतु मेरा विश्वास है कि वह पोटली St. Peter (ईसाके प्रथम शिष्य, क्रिश्चियन स्वर्गके द्वारपाल सेण्ट पीटर) की चादरके समान है; अनंतके यावत् शिकार उसमें किलबिल कर रहे हैं। अभी मैं पोटली नहीं खोलूंगा, असमयमें खोलनेसे शिकार भाग सकते हैं। देशमें भी अभी नहीं जाऊंगा, इसलिये नहीं कि देश तैयार नहीं हुआ है बल्कि इसलिये कि मैं तैयार नहीं हुआ हूं। कच्चा कच्चोंके बीच जाकर क्या काम कर सकता है? इति।

तुम्हारा—'सेजदा'